

• श्रीबीमुहुरोदाहूरी जयतः •

स वं पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः इच्छुकितः पुसां विद्वक्सेन कथामुद्यः ।

मोहनावद्ये नृषि रात्रि श्रम द्वय त्रिक्षेपम्



अहैतुक्यप्रतिहता यथात्मासुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । सब धर्मों का थेष्ट रीति से पालन करते जोव निरन्तर ।  
भक्ति अधोक्षज की महैतुकी विघ्नशून्य अर्थात् मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो अम व्यर्थं सभी केवल कंचनकर ।

वर्ष १३ } गौराब्द ४८१, मास—केशव २८, वार—गर्भोदाशयी { संख्या ७  
} शुक्रवार, २८ अग्रहायण, सम्वत् २०२४, १५ दिसम्बर, १९६७ }

## श्रीश्रीव्रजनवीनयुवद्वाष्टकम्

( श्रीलरुप गोस्वामी विरचितम् )

श्रीश्रीराधाकृष्णणी जयतः ॥

अदुविधविदधतास्पदविमुखवेशथियो

रमन्दशिखिकन्धरा कनकनिन्दवासस्तिवषोः ।

स्फुरतपुरटकेतकीकुसुमविभ्रमाभ्रप्रभा—

निभाङ्गमहसो र्भजे व्रजनवीनयूनोद्युगम् ॥१॥

जो नृत्यगीतादि अशेष कलाओं और विद्याओंके शाश्वतस्वरूप हैं, अत्यन्त मन-  
मोहनकारी वेशभूपाओंद्वारा शुशोभित हैं, जिनके वस्त्र श्रेष्ठमयूरके कण्ठके वरणकी और  
सुवर्ण की निन्दा कर रहे हैं, तथा जिनकी व्यङ्गकान्ति प्रफुल्ल सुवर्ण केतकी-पुष्प और  
नवीन मेघ को आश्चर्यमें डाल रही है, ऐसे उन व्रजके किशोर युगल—नवोत्ता किशोरो  
थीराधिका और नवीन किशोर श्रीकृष्ण का मैं भजन करता हूँ ॥१॥

समृद्धविधुमाधुरीविधुरताविधानोद्धरै—  
नंवाम्बुरुहरम्यतामदविडम्बनारम्भभि ।  
विलिम्पदिव वर्णकावलिसहोदरंदिग्मतटी—  
मुख्युतिभरभंजे व्रजनवीनयूनोयुर्गम् ॥२॥

जो अपनी पूर्णचन्द्रकी माधुरी और सौन्दर्य विधानकारी तथा प्रफुल्ल नवीन कमलके सौन्दर्य मद को जयकारी श्रीमुखकान्ति द्वारा श्रेष्ठ कुंकुमादि अनुलेपनों की तरह दशों दिशाओं में व्याप्त होकर सुशोभित हैं, ऐसे व्रजके उन किशोर-युगल—नवीना किशोरी श्रीराधिका और नवीन किशोर श्रीकृष्णका भजन करता हूँ ॥२॥

विलासकलहोद्धतिस्खलदमन्दसिन्दुरभा—  
गखर्वमदनाङ्गुशप्रकरविभ्रमैरङ्गुतम् ।  
मदोद्धुरमिवेभयोमिथुनमूलसद्वलरी—  
गृहोत्सवरतं भजे व्रजनवीनयूनोयुर्गम् ॥३॥

उद्गडतायुक्त रति कलहमें गिरे हुए सिन्दुर विन्दुओं तथा कन्दर्पके अंकुशपात की तरह नख-क्षत चिह्नोंसे जिनके सर्वाङ्ग सुशोभित हैं, जो मदमत्त हस्ती-युगल की तरह सुन्दर लतागृहमें शृङ्गार महोत्सवमें अत्यन्त आसक्त हैं, ऐसे व्रजके नवीन किशोर युगल—नवीना किशोरी श्रीराधिका और नवीन किशोर श्रीकृष्ण का मैं भजन करता हूँ ॥३॥

घनप्रणायनिर्भरप्रसरलब्धपूर्तेमंनो—  
हृदस्य परिवाहितामनुसरदिभरस्त्रैः प्लुतम् ।  
स्फुरत्तनुरुहाङ्गुरेनवकदम्बजम्भथियं  
व्रजत्तदनिशं भजे व्रजनवीनयूनोयुर्गम् ॥४॥

प्रगाढ़ प्रणायरसके स्रोतसे परिपूर्ण, नेत्र विगलित आनन्दाश्रुरूप जलप्रवाह द्वारा परिव्याप्त एवं रोमाञ्चरूप नवकदम्ब द्वारा सुशोभित जिनका चित्त—सरोवर सर्वक्षण विराजमान है, ऐसे उन व्रजके नवीन किशोर युगल—नवीना किशोरी श्रीराधिका और नवीन किशोर श्रीकृष्ण का मैं निरन्तर भजन करता हूँ ॥४॥

अनङ्गरणविभ्रमे किमपि विभ्रदाचार्यकं  
मिथश्चलहृगञ्चलच्छुतिशलाकया कीलितम् ।

जगन्यतुलधर्मभिर्भुनर्भिस्तन्वतो  
मिथो विजयितां भजे व्रजनवीनयूनोयुगम् ॥५॥

जो कन्दपं युद्धमें परस्पर एक दूसरेके आचार्य हो रहे हैं, चच्चत्र अपाञ्जनेत्रद्युति-रूपी शलाका द्वारा परस्पर एक दूसरेको विद्ध कर रहे हैं, एवं जो जगतके अतुल धर्मोंसे पूर्ण मधुर नर्मविलास द्वारा परस्पर एक दूसरेपर मिथ्या जयलाभ कर रहे हैं, ऐसे उन व्रजके नवीन किशोर-युगल—नवीना किशोरी श्रीराधिका और नवीन किशोर श्रीकृष्ण का मैं भजन करता हूँ ॥५॥

अट्टष्ठवरचातुरीचलचरित्र-चित्रायितैः  
सह प्रणायिभिर्जनैविहरमानयोः कानने ।  
परस्परमनोमृगं श्रवणचाहणा चर्चयो—  
चयेन रजयद्भजे व्रजनवीनयूनोयुगम् ॥६॥

सच्चरित्रता और अभूतपूर्वं चानुर्यादि गुणोद्वारा विभूषिता श्रीललिता आदि प्राणप्रिया सखियोंके साथ जो वनमें विहार कर रहे हैं, एवं अत्यन्त श्रवण-मोहनकारी मधुर चर्चरी वाद्यके द्वारा परस्पर एक दूसरेके चित्तमृगको आकर्षण कर रहे हैं, ऐसे उन व्रजके नवीन किशोर युगल—नवीना किशोरी श्रीराधिका और नवीन किशोर श्रीकृष्ण का मैं भजन करता हूँ ॥६॥

मरन्दभरमन्दिर-प्रतिनवारविन्दावलो  
सुगन्धिनी विहारयोजंलविहार विस्फुर्जितैः ।  
तपे सरसि वल्लभे सलिलवाद्यविद्याविधौ  
विदग्धभुजयोर्भजे व्रजनवीनयूनोयुगम् ॥७॥

जी श्रीधमकाल के मकरन्दपूर्ण अभिनव सुन्दर कमलश्रेणी के सुगन्धसे सुगन्धित श्रीराधाकृष्णमें जल-विहार करते समय अपने हृदयस्थ मुक्ताहारके छिन्न-भिन्न होनेके कारण हार धून्य होकर स्थित हैं, जो अत्यन्त निपुणताके साथ अपने भुजयुगल द्वारा जगवाद्य व जानेमें तत्पर हैं, ऐसे व्रजके उन नवीन किशोर युगल—नवीना किशोरी श्रीराधिका और नवीन किशोर श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ ॥७॥

मृषाविजयकाशिभिः प्रथित-चातुरीराशिभिः,  
गर्लहस्य हरणं हठात् प्रकटयदिभृच्चर्गिरा ।  
तदक्षकलिदक्षयोः कलितपक्षयोः साक्षिभिः  
कुलैः स्वसुहृदां भजे व्रजनवीनयूनोर्युगम् ॥८॥

कण्ठस्थ हारों का पण रखकर जिनकी दूतकीड़ा आरम्भ होने पर परमचतुरा श्रीललितादि सलियाँ श्रीराधिकाजी का पक्ष लेकर उच्च स्वरसे श्रीराधिका की जय-घोषणा करते हुए हारोंका हरण करती हैं और उसी प्रकार श्रीकृष्णके प्राणप्रिय सखा मधुमंगलादि श्रीकृष्णकी जय घोषणा करते हुए हारोंका हरण करते हैं, ऐसे दूतकीड़ा में कुशल अपने-अपने पक्षके साक्षियों और सुहृदों द्वारा आवृत हैं, उन व्रजके नवीन किशोर-युगल—नवीना किशोरी श्रीराधिका और नवीन किशोर श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ ॥८॥

इदं बलिततुष्टयः परिपठन्ति पद्माष्टकं  
द्वयोर्गुणविकाशि ये व्रजनवीनयूनोर्जनाः ।  
मुहूर्नवनबोदयां प्रणयमाधुरीमतयो रवाप्य  
निवसन्ति ते पदसरोजयुग्मान्तिके ॥९॥

व्रजनवीन किशोर-युगल—श्रीराधिका और श्रीकृष्णके गुणप्रकाशकारी इस पद्माष्टक का जो अत्यन्त प्रेमपूर्वक पाठ करते हैं, वे इस युगल दम्पत्ति के नवनवायमान चमत्कारपूरणं प्रणयमाधुरीका आस्वादन प्राप्त कर अन्तमें उनके पादपद्मयुगल-प्रान्तमें नित्यकाल निवास करते हैं ॥९॥

## अन्याभिलाष

अधिकांश व्यक्ति 'आचार' कहनेसे स्मृति-शास्त्रोक्त कर्तव्य कर्मोंको ही समझते हैं। जो ऐसा समझते हैं, उनके साथ पारमार्थिक आचरणकारी व्यक्तियोंका मतभेद होता है। यदि प्राकृत बुद्धि के बल पर यथार्थ निरांय करनेकी चेष्टा करें, तो रुचिभेदसे स्मृति शास्त्रका आदेश-भेद अवश्यम्भावी है। अपने स्वभावसे सङ्ग द्वारा रुचिकी उत्पत्ति होती है। अनादि वासना द्वारा स्वभावका गठन होता है और सञ्चित अज्ञात वासना द्वारा पुष्ट होकर वह जीव-स्वभाव अज्ञातरूपसे अपना उपयोगी सङ्ग प्राप्त करता है। प्राकृत वासना प्रकाशमान जगतमें नवीन कर्मसे मिलाप करनेकी चेष्टा करती है। किन्तु अज्ञात वासना उसके अनुकूल होने पर प्राकृत जगतमें इच्छानुसार फल प्रदान करती है। प्राचीन वासना कई समय बर्त्तमान वासना पर आधार करती है। इस परस्पर युद्धसे ही भेद-जगतमें अप्रीतिका उदय होता है। वासना ही भवरोगका मूल है,—ऐसा जगतके सभी भेणीके बिहानोंका विश्वास है। वासना-विनाश ही जीव मात्रकी वृत्ति है। मनुष्योंकी सभी क्रियाएँ ही वासना-तृप्तिके लिए की जाती हैं। वासनाका समूल नाश नहीं होनेसे तृप्ति नहीं होती। जो पारमार्थिक व्यक्ति वासनाको जिस जिस प्रकारसे खण्डन करनेमें समर्थ हुए हैं, वे अपने चरित्रमें वासना विनाशका उतना ही सहज पथ दिखलानेमें समर्थ हुए हैं।

लौकिक विवेक के बलपर इस वासनाको लेकर

विचार करने पर जगतमें मनुष्योंके तीन प्रकारके आचार देखे जाते हैं। लौकिक व्यक्तियोंमें अभिलाष युक्त सेवकोंकी संख्या ही अत्यन्त अधिक है। वे सब प्रकारसे वासनाको बढ़ाकर वासना - तृप्तिको ही जीवनका उद्देश्य समझते हैं। मेरा अस्तित्व-ज्ञान ही मेरी प्रीतिका उद्देशक है। जहाँ मुख्य रूपसे या गौण रूपसे मुझे स्वार्थजनित प्रीति प्राप्त न हो, वह सब प्रकारसे परित्याग करने योग्य है। मनुष्य जन्मके प्रारम्भसे लेकर अन्तकाल तक सब अवस्थाओंमें ही यह वासना जनित प्रीतिका अनुसन्धान सब प्राणियोंमें ही देखा जाता है। जब मनुष्य-अपने अस्तित्व का अनुभव करते हैं, उस समय वह अनुभव ही उन्हें अनुभूत आनन्दकी ओर ले जाता है। धीरे-धीरे अभिलाषासे उत्पन्न वृत्ति-संमूह सङ्ग के गुणों द्वारा पुष्ट होते रहते हैं। दृश्य पदार्थके अनुशीलनके लिए आँखें व्यस्त हो पड़ती हैं, कान सुनने योग्य पदार्थके प्रति धावमान होते हैं, नासिकाकी वृत्ति गन्ध संग्रहकी ओर प्रवृत्त होती है, रस-ग्रहण करनेके लिए जिह्वा लालायित होती है और स्पर्श का अनुभव करनेके लिये त्वचा व्यस्त हो पड़ती है। वाक्, पाणि, पाद आदि कर्मन्द्रियों चक्षु-करणादि वृत्तियोंकी सहायतासे अपने-अपने उपयोगी कर्म-समूहकी अभिव्यक्ति करती हैं। अस्तित्वानुभूतिके पुष्ट होने पर उद्देश्यकी स्वरूपानुभूति प्राणीमात्रके ही उसके एकमात्र अपने आनन्दमें ही पर्यंतसित होती है। उस समय मनुष्य सांसारिक कर्ममें प्रवृत्त

होते हैं। प्राकृत - जगतके भोक्ताके अभिमानसे प्रेरित होकर कर्मका प्रारम्भ करते हैं। पूर्व (प्राचीन) वासनासे बाधा प्राप्त कर उन्हें प्रत्येक पदमें ही एक अभिलाषासे दूसरे अभिलाषावी पूर्ति के लिए भ्रमण करना पड़ता है।

वर्तमान वासना जहाँ प्राचीन वासना द्वारा बाधा प्राप्त न हो, उस अवस्थामें जीव दोनों वासनाओंकी प्रीतिमें प्रीति प्राप्त करते हैं। जहाँ इन दोनों वासनाओंमें परस्पर विरोध हो, वहाँ अप्रीति प्राप्त कर प्रीति अन्वेषणकारी जीव एक वासनाकी विफलता देखकर दूसरी वासनाकी तृप्ति करनेकी चेष्टा करते हैं। कहीं-कहीं वासनानुकूल फल प्राप्त कर प्राकृत विषयोंमें उत्साहित होकर बहुतसे फल प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं। अभिलाषाके साथ कर्ममें प्रवृत्त मनुष्य अपनी प्राचीन वासनाके विरुद्ध में प्रवृत्त वासनाके सम्पूर्ण बलका प्रयोग करते रहते हैं। यह युद्ध ही अभिलाषायुक्त प्रेतिका अनुसन्धान है। इस स्थलमें लौकिक बुद्धिका अप्राकृत बुद्धिसे विरोध है। जब तक अभिलाष-दूषित बुद्धि प्रबल हो, तब तक वह अन्याभिलाषाशून्य अप्राकृत वृत्तिको स्थिर होने नहीं देती। लौकिक बुद्धिके वशवत्ती होकर मनुष्य वासना जनित जड़ीय सरलताके आश्रयमें अप्राकृत बुद्धिको नापनेकी चञ्चल चेष्टा करते हैं। उस चंचलताके कारण उन्हें जड़ीय सरलतारूप मूर्खता वर्चित कर देती है। दुर्भाग्य प्रीतिके दास प्रीतिके लिए अप्राकृत निर्णय करने जाकर—वासनासे उत्पन्न अभिलाषिता - शून्य अवस्थाको प्राप्त करनेकी चेष्टा कर जड़ीय अप्रीतिके घोरतर अन्धकारमें गिर पड़ते हैं। अभिलाषिता

शून्य प्रवस्थाने उनकी परल बुद्धिमें कल्पना द्वारा जो उत्पन्न किया, वह भी अभिलाषा - सामरकी केवल एक लहरमें ही परिणत हो जाती है। प्राचीन वासनाने उन्हें ऐसा वर्चित किया कि वे उस वज्ञनाके हाथसे अपनेको मुक्त न कर पाकर उस अभिलाषारूपी कीचड़में ही गोते खाने लगे। अभिलाषिता-शून्याभिमानी वर्चित सरल विवेकी अभिलाषा-विषयसे जर्जरित होकर जब सरलरूपसे प्राकृत और अप्राकृत विचारका भेद स्थापन करते हैं, तब उस वर्चित विश्वासके कारण उनके निकट जगत दो प्रकारसे मालूम होता है—प्रवृत्त जगत और निवृत्त जीवन। अभिलाषायुक्त व्यक्ति प्रवृत्त जगत को प्राकृत कहकर निवृत्त अवस्थाको अप्राकृत कहते हैं।

यह प्रवृत्त जगत मनुष्यकी प्रवृत्ति-समूहोंका विकासस्थान है। वहाँ काम, कोष, लोभ, मोह, मद, मत्सरता—ये छः मन्त्री निष्कपटरूपसे प्रवृत्ति-जगतके शासनमें सहायता करते हैं। प्रवृत्त मनुष्य मन्त्री-सम्भामें स्थित होकर वस्तु विशेषके अनुशीलन का आरम्भ करने पर प्रधान मन्त्रीरूप कामकी प्रधान सहायता प्राप्त करते हैं। इस अवस्थामें वाकी पाँच मन्त्री भी अपनी कार्यकुशलता दिखलाते हैं।

प्रवृत्त मनुष्यका मुख्य आश्रय प्राकृत शरीर है। प्रतिग्रह और दान—ये शरीरको वृत्तियाँ हैं। बाहरी पाँच भौतिक शरीरमें जिस प्रकार स्थूल वस्तुका ग्रहण और विसर्जन है उसी प्रकार अन्तः शरीरमें सूक्ष्म दान और प्रतिग्रह है। बाहरी शरीर की रक्षाके लिये जिस प्रकार बाहरी द्रव्योंको ग्रहण

करना पड़ता है, उसी प्रकार वाहरी विसर्जनकी भी आवश्यकता है। निवृत्त जीवनमें वाहरी या आन्तरिक ग्रहण या प्रतिग्रहकी व्यवस्था नहीं है। प्रवृत्त पुरुष अपनी वृत्तिकी लोभमें विमुग्ध होकर वृत्तिको बढ़ानेका प्रयास करता है। निवृत्त जीव वृत्ति-विनाशमें प्रवृत्त होकर प्रवृत्तिके संकोचमें लगे हुए हैं। प्रवृत्त पुरुष वृत्ति संकोचको 'पाप' कहते हैं। किन्तु निवृत्त पुरुष उसीको 'पुण्य' बताते हैं। अथवा दूसरे शब्दोंमें निवृत्त व्यक्ति प्रवृत्तिका सम्मान नहीं करते और प्रवृत्तिको ही अप्रीतिका आधार समझ कर प्रवृत्तिके विपरीत-धर्मका आचरण करते हैं। वास्तवमें दोनोंकी चेष्टा ही प्राकृत बुद्धिमारा उत्तम है। ख्योंका सङ्ग, मद्य और मौस-भक्षण आदिमें प्रवृत्त पुरुषकी स्वाभाविक वृत्तियाँ निवृत्त व्यक्तिकी हृषिमें दोषपूर्ण हैं। इसलिये इन्हें परित्याग करनेके लिए निवृत्तपुरुष जोर देते हैं। वैष्णवप्रवर मनु और श्रीमद्भागवतमें निरपेक्ष रूपसे दोनों पक्षका रुचिभेद जनित विवादकी मीमांसा की है। इस प्रवृत्तिका परित्याग करनेसे ही शुभफल प्राप्त होगा, ऐसा विश्वास निवृत्त सरल विश्वासियोंके लिये ही शोभा पाता है। अथवा प्रवृत्ति द्वारा अभिलाषाको बढ़ानेसे ही वासनाके हाथसे छुटकारा मिलेगा, ऐसी बात नहीं है। अभिलाषाका सद्यवहार करने जाकर कुछ व्यक्ति अपनी रुचि द्वारा निवृत्तिको ही परम लज्जत कर अत्यन्त जड़ीभूत होते हैं। और कोई प्रवृत्ति-तरङ्गमें पड़कर चौदह भूवनोंमें लोट-पोट करते हैं। प्रवृत्ति और निवृत्तिके घात-प्रतिघात में चक्कर खाकर परस्पर विवाद-समुद्रकी उत्ताल

तरङ्ग-मालामें पड़कर पाप-पुण्य अर्जन कर उन्होंने किस प्रकारकी प्रीति प्राप्त की है, वे ही जानते हैं।

प्रवृत्त पुरुषोंने कुछ काल तक कलिपत विश्वासानुसार कर्म तरंगमें भासमान होकर उनके प्रवृत्ति को वाधा प्राप्त होते देखकर निवृत्तिको प्रवृत्तिके परिणामके रूपमें स्थिर किया है। स्वार्थ और परार्थ नामक प्रवृत्तिके दो भेद उनकी हृषिमें आती है। वे परमार्थ-साधनमें स्वार्थोपार्जनको स्वार्थ-साधनमें स्वार्थोपार्जनकी अपेक्षा थोड़ा उत्तम स्थोन प्रदान करते हैं। इस समय उनके आनन्दमें स्वार्थ और परार्थ विशेष प्राधान्य प्राप्त करते हैं। यारी रक्षा करनेके लिये ग्रहण, विसर्जन आदि किया समूहोंमें कर्तव्याकर्तव्यता निर्ढारण करनेकी चेष्टा करते हैं। उसके परिणाममें वे यह देख पाते हैं उनकी विषय-ग्रहण-तालिकामें भी दो प्रकारके द्रव्याभिनिवेश हैं। एक श्रेणीकी वस्तु उनकी प्रीति के कारण होने पर भी दूसरेके लिये अप्रीतिका कारण होता है। दूसरेकी प्रीति द्वारा उनकी अप्रीति बढ़ती है—ऐसा देखकर वे दोनों एक दूसरे के साथ प्रीति-सूत्रमें आबद्ध होते हैं। तब प्रीति-सूत्रको बनाये रखनेके लिये उपायके रूपमें पुण्य और पापका भेद करते हुए पुण्य करनेमें लग पड़ते हैं। उस समयसे वे और प्रवृत्तिके नामसे जिस किसी उपायसे खो-संसार नहीं करते, मदमत्तता उत्पन्न करनेवाली मद्यसेवा नहीं करते और शरीरको बल प्रदान करनेवाले मौस-सेवनके द्वारा वयेच्छाचार-रुपी अभिलाषाकी पूर्ति करनेवी चेष्टा नहीं करते। जिस किसी उपायसे विषय-ग्रहणके मूल-

स्वरूप घन-संग्रह उनके निकट अत्यन्त अनुचित है। पुण्य-कर्मके लिए घन-संग्रहकी पिपासा प्रबल होनेके कारण वे अर्थ-संग्रह करनेकी चेष्टा करते हैं, किन्तु वे उस चेष्टाको पापोंकी ओर लगाकर किसी की भी हानि नहीं करते। विद्या-संग्रह पिपासा-प्रबल होनेके कारण वे विद्या-संग्रहकी चेष्टा करते हैं, किन्तु उस चेष्टाको पापोंमें लगाकर विसीके ऊपर आधिपत्य नहीं करते। स्वादिष्ट भोजन पाने की प्रबल इच्छा रहने पर भी वे दुर्बल प्राणियोंका वध कर आत्म-शरीरको पुष्ट नहीं करते। भोगके विषय उस समय बहुत ही कम हो जाते हैं। निवृत्त जीवनके सम्पत्ति-समूह गुप्तरूपसे उनके हृदयमें अधिकार प्राप्त करते हैं। जगतके सभी व्यक्तियोंको सुख मिलें, ऐसा व्यापक उदार विचार उदय होकर उनके पुण्यको बढ़ाता है वे निवृत्त पुरुषको आदर करते रहते हैं। निवृत्तिकी चिह्नोंका आदर उन्हें मालूम पड़ता है। अभिलाषासे मुक्ति प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय 'निवृत्ति' है—ऐसा वे स्थिर करते हैं। किन्तु ऐसा सरल जड़ीय विश्वास केवल अभिलाषाके प्रकारान्तरको छोड़कर अधिक दिखलानेमें समर्थ नहीं है।

जगतमें सरल जड़ीय विश्वासजात धर्म-समूह की अति उन्नत चिन्ता यहीं तक सीमित है। पारमार्थिकोंका किन्तु ऐसा सरल विश्वास नहीं है। वे जड़ीय सरल-विश्वासियोंके निकट अपना परिचय देनेके लिए व्यस्त नहीं हैं। जो सभी जड़बुद्धियुक्त सरल विश्वासकारी उनकी अन्याभिलाषिता-शून्यत्व के स्वरूप कृष्णभक्तिकी बात सुनते हैं, वे ही उन्हें नितान्त बुद्धिहीन समझते हैं। परम करुणामय

भगवान इसके द्वारा दो कौशलोंकी रक्षा करते हैं। अनशिकारी व्यक्ति अपनी अयोग्यताके कारण कृष्ण और कृष्णदासको पहचाननेमें असमर्थ हैं और वह अयोग्यतारूप साधन कदापि कृष्ण और कृष्ण-दासकी कृपा प्राप्त करानेमें समर्थ नहीं है।

भक्तवेशधारी जड़ीय सरल विश्वासकारीका अशान्त हृदय कृष्णदास्यके अभिमानमें कपटता द्वारा प्राकृत-प्रतिष्ठाको बढ़ानेके लिए लालायित है। किन्तु प्राकृत प्रतिष्ठाके नष्ट होने पर उनकी विशुद्ध कृष्णभक्ति उदित होती है। इसलिये प्राकृत जगतमें प्रत्येक व्यक्तिके हाथमें उनके दमन करनेकी व्यवस्था है। वस्तुतः अन्याभिलाषिता-शून्य कृष्णदासका दमन करना प्राकृत जीवोंके लिए तो दूर रहें, सरल विश्वासकारीके कलिपत फलदाताके लिए भी सम्भव नहीं है। "आश्लिष्य वा पादरतां" इलोक के भावाथंसे यह स्पष्ट मालूम होता है।

दूसरे विशुद्ध कृष्णदासका परिचय अन्याभिलाषिता-शून्य कृष्णदास ही जानते हैं। अन्याभिलाषिता रहने पर अप्राकृत पारमार्थिक कपट-अभिलाषीके निकट अपना स्वरूप प्रकाश नहीं करते।

इसलिये अन्याभिलाषिता-शून्य भक्त अप्राकृत विचार द्वारा प्राकृत चिन्तातीत कृष्णको छोड़कर दूसरे सभी पुण्य-विग्रहोंको, अव्यक्त प्रकृतिको या जेय ब्रह्मासायुज्यको नरककी अपेक्षा किसी प्रकारसे श्रेष्ठ नहीं देखते। वे सीमाबुद्धियुक्त सरल व्यक्तियों प्रबल कृपाका पात्र जानते हैं और स्वयं सरल अयोग्य व्यक्तिके निकट प्रतिकूलानुशीलनके विग्रह रूपसे प्रतीत होते हैं।

—जगदगुरु अविष्टारपाद श्रीब्रह्मस्वती ठाकुर

# प्रश्नोत्तर

## दर्शन

१—प्राकृत, आध्यात्मिक और अप्राकृत दर्शन में क्या भेद है ?

“जगतमें जितने भी जीव हैं, वे अधिकारके अनुसार तीन प्रकारके हैं—प्राकृत, आध्यात्मिक और अप्राकृत । साधारणतः छः प्रकारके दर्शन माने गये हैं । किन्तु उन समस्त दर्शनोंको तीन विभागोंमें बाँटा जा सकता है—प्राकृत-दर्शन, आध्यात्मिक-दर्शन और अप्राकृत-दर्शन । न्याय, वैशेषिक और पूर्व-मीमांसा—ये तीनों प्राकृत दर्शन हैं । सांख्य, पातञ्जल, और वेदान्तका मायावादी भाष्य—ये तीनों आध्यात्मिक दर्शन हैं । वेदान्त स्वयं अप्राकृत-दर्शन है ।”

—‘विज्ञप्ति’ क० क०

२—विभिन्न आचार्य प्रचारित विभिन्न दार्शनिक मतोंका समन्वय कैसा सम्भव है ?

“केवलाद्वैतवाद, केवल-द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद—ये सभी नामके विवादमात्र हैं । समस्त वादोंका वादत्व दूर होने पर जो परम सत्य है, वह भगवान की अचिन्त्य शक्ति का परिणामरूप नित्यभेदाभेद-ज्ञान है । यही सर्ववेद वाक्य है और महावाक्य-सम्मत है ।”

—‘भाष्यजीवलक्षण’ श्री भा० मा० १०।४

३—अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्त सम्पूर्ण वयों है ?

“श्री जीव गोस्वामीने अपने ‘सर्वसम्बादिनी’ ग्रन्थमें इस मत—सिद्धान्तको अचिन्त्य भेदाभेदात्मक लिखा है । निम्बाकं मतानुसार जो भेदाभेद या द्वैताद्वैत मत है, वह पूर्णताको प्राप्त नहीं कर सका । श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा प्राप्त कर वैष्णव जगतने उस मतकी पूर्णता प्राप्त की है । श्रीमध्व मतानुसार जो सच्चिदानन्द नित्य-विग्रह स्वीकार किया गया है, वही इस अचिन्त्यभेदाभेद का मूल है—ऐसा जानकर श्रीमन्महाप्रभुजीने मध्व सम्प्रदाय को स्वीकार किया है । पूर्व वैष्णवाचार्योंके सिद्धान्तित सभी मतोंमें थोड़ा-थोड़ा वैज्ञानिक अभाव होनेके कारण उनके परस्पर वैज्ञानिक भेदसे सम्प्रदाय भेद हुआ है । साक्षात् परतत्व श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपनी सर्वज्ञताके बल पर उन सभी मतोंके अभावोंको पूर्ण करते हुए श्रीमध्वाचार्यजीके ‘सच्चिदानन्द नित्य-विग्रह’ श्रीरामानुजाचार्यजीका ‘शक्ति-सिद्धान्त’ श्रीविष्णुस्वामीजीका ‘शुद्धाद्वैत-सिद्धान्त’, और ‘तदीय-सर्वस्वत्व’ और श्रील श्रीनिम्बाकचार्यजीका नित्य द्वैताद्वैत-सिद्धान्तको निर्दोष कर अपने अचिन्त्य भेदाभेदात्मक अत्यन्त विशुद्ध मत ( सिद्धान्त ) को जगतमें कृपा कर प्रकाशित किया है ।”

—श्रीम० शि० ६ वा० ५०

४—अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त क्या श्रुतिसम्मत सर्वदेशिक दार्शनिक सिद्धान्त है ?

“केवल भेद या केवल अभेदवाद तथा यद्वाद्वैतवाद या विशिष्टाद्वैतवाद—ये सभी ही वेदके एकदेश-सम्पत् होनेके कारण अन्य देश विरुद्ध हैं। किन्तु अचिन्त्यभेदाभेद मन (सिद्धान्त) वेदका सर्वदेश-सम्पत् मिद्धान्त है, जीवके स्वतः गिद्ध श्रद्धाका विषय है और साध्युक्ति सम्मत है।”

—श्रीम० शि० ६ वा० प०

५.—अचिन्त्यभेदाभेद मिद्धान्त स्वरूपतः सर्ववादी सम्मत क्यों है ?

“अचिन्त्य भेदाभेद मिद्धान्त ही समस्त भक्तिशास्त्रों द्वारा स्वीकृत है। इसमें जितना ही युक्तिका प्रयोग हो, उतना ही इस मिद्धान्त की सर्वाङ्गीनता निहितस्थानमें विशुद्ध ज्ञान पहती है। युक्ति दो प्रकार की है—स्वपक्ष और प्रतिपक्ष। वेद, पूराण, और समस्त महाजन-कृत मिद्धान्त इसके पोषक हैं। वे ही स्वपक्ष हैं। श्रीछंकराचार्यादि शक्त ज्ञानवादी इसके प्रतिपक्ष हैं। श्रीछंकराचार्यजीने कहा है—‘हे नाथ, तुम्हारे और मुझमें भेद दूर होने पर मैं तुम्हारा रहौंगा, किन्तु तुम्हें मेरा कह नहीं सकूँगा।’ ऐसी प्रतिपक्ष युक्ति भी भेदाभेदवादका पोषक है। इसलिए यह मिद्धान्त सर्ववादी-सम्मत है।”

—तृ० भा० तात्पर्यनिवाद

६.—अचिन्त्य भेदाभेद-मिद्धान्तमें अचिन्त्य शब्द का क्यों प्रयोग किया गया है ?

“कृष्णके साथ जीवका भेद और अभेद तथा कृष्णके साथ जगतका भेद और अभेद युगपत् सत्य है—ऐसा सिद्ध हो चुका है। सर्वीम मानव-युक्ति

द्वारा इसका मामंजस्य नहीं होता। अताव नित्य भेदाभेद तत्त्व के लिए ‘अचिन्त्य’ शब्द का प्रयोग हुआ है।”

—चै० शि० ११५

७.—केवलाद्वैतवाद ही क्या अद्वय ज्ञान और वेद-सम्मत है ?

“बहुतसे व्यक्ति ऐसा समझते हैं कि केवल अभेदवाद ही अद्वय ज्ञान है। किन्तु वात ऐसी नहीं है। केवल अभेदवाद सम्पूर्ण वेद-विरुद्ध है। वेदोंमें अनेक स्थानोंमें अभेदवाद और अनेक स्थानोंमें नित्य भेदका उपदेश दिया गया है। वस्तुतः वेद शास्त्र स्वतः मिद्ध ज्ञानस्वरूप है, अताव कोई विशेष मतवाद उसमें नहीं है। वेदका मिद्धान्त यही है कि परब्रह्मकी अचिन्त्य शक्तिसे भेद और अभेद दोनों एक साथ सत्य और नित्यसिद्ध हैं। इसलिए यह विश्व और सभी जीव परब्रह्मसे युगपत् पृथक् होकर भी उनसे अभेद हैं। द्वैत और अद्वैत एक साथ ही सत्य हैं। अतएव अद्वैततत्त्वमें जड़से आत्मतत्त्वका पार्थक्य है और आत्मतत्त्वमें यगुचेतन्य जीवमें परमेश्वरका नित्य पार्थक्य है। भेदाभेद तत्त्वको जो जान सकते हैं, उनके लिए और कृष्ण ज्ञानमा वाकी नहीं रहता। जब अचिन्त्यभेदाभेद तत्त्वका प्रथम प्रकाश प्रतीत होता है, तब उम तत्त्व की अद्वैत ज्ञान-सिद्धि होनी तैरता है। दृष्ट-स्वरूप जीव उम परमतत्त्वमें कृष्ण भी पृथक् देख नहीं पाते। जब वे प्राकृत हृष्टिके वशीभूत हैं, तब ही वे केवल-भेद देख पाते हैं। जड़ एक नित्यसिद्ध तत्त्वके रूपमें चैतन्य से पृथक् रूपमें भासमान होता है। इसी का नाम द्वैतज्ञान है।”

—‘वस्तुनिर्देश’, स० तो० २१६

८—सातवत आचार्योद्वाग प्रचारित विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्त और तज्जनित असम्प्रकागित वैज्ञानिक विचार वैचित्र्यताकी परिपूर्णता किन्होने प्रदान की है ?

“श्री रामानुजाचार्यने विशिष्टाद्वैत मतानुसार भक्तिका प्रचार किया, श्रीमन्मध्वाचार्यजीने शुद्धाद्वैत मतानुसार भक्तिका प्रचार किया, श्रीनिम्बादित्याचार्यने द्वैताद्वैत मतानुसार भक्तिका प्रचार किया और श्री विष्णुस्वामीने शुद्धाद्वैत मतानुसार भक्ति का प्रचार किया । रामानुज मतानुसार चित् और अचित्—इन दो विशेषणोंसे विशिष्ट होकर एकमात्र ईश्वर ही वस्तु है । मध्वाचार्यके मतानुसार जीव ईश्वरसे पृथक् तत्त्व है, विन्तु भगवानकी भक्ति करना ही उसका स्वभाव है । निम्बादित्यके मतानुसार जीव ईश्वरसे युगपत् भेद और अभेद है, अतएव भेदकी भी नित्यता स्वीकृत है । विष्णुस्वामी के मतानुसार वस्तु एक होने पर भी वस्तुतः व्रह्मता और जीवता नित्य पृथक् है । इस प्रकार परस्पर भेद रहने पर भी उन्होने सभीने ही भक्ति का नित्यत्व, जीवका नित्यदास्य और अन्तमें प्रेम गतिको स्वीकार किया है । अतएव सभी ही मूलतत्त्व में वैष्णव होने पर भी उनके विज्ञानमें थोड़ा-थोड़ा पार्थक्य होनेके कारण असम्पूर्णता थी । साक्षात् भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभने यवतीर्ण होकर उस वैज्ञानिक असम्पूर्णताको दूर करते हुए विज्ञानशुद्ध भक्ति तत्त्वका जगतमें प्रचार किया है ।”

श्रीम० शि० ९ वा० प०

९—श्रीरामानुजाचार्यका सिद्धान्त क्या गौड़ीय-मत-विरुद्ध नहीं है ?

“श्रीरामानुजाचार्यजीके सिद्धान्त-समूह श्री गौड़ीय-प्रेम-मन्दिरके भित्ति (आधार) स्वरूप हैं ।”

—‘श्री अर्थ पंचक’, स० तो० ७।३

१०—श्री निम्बादित्यका मत और अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त क्या एक ही है ?

“बहुतसे लोगोंका कहना है कि गौड़ीय वैष्णवों के मतकी निम्बादित्यके मतसे गत्र विषयमें एकता है । किन्तु बात ऐसी नहीं है । निम्बादित्यका मत हैताद्वैतवाद है । किन्तु श्रीगौड़ीय वैष्णवोंका मत अचिन्त्यभेदाभेद है ।”

— श्रीनिम्बादित्याचार्य स० तो० ७ वा० वर्ष

११—बोद्ध दर्शनके असत् सिद्धान्त कौन-कौन से हैं ?

बोद्ध मतमें दो शाखाएँ हैं—‘हीनायन’ और ‘महायन’ । उन मार्गोंपर चलनेके लिए नी सिद्धान्त हैं—(१) विश्व यनादि है, अतएव ईश्वरशून्य है, (२) जगत् असत्य है, (३) अहं तत्त्व है (४) जन्म जन्मान्तर और परलोक यथार्थ हैं, (५) बुद्ध ही तत्त्व-लाभका उपाय है, (६) निर्वाण ही परम तत्त्व है, (७) बोद्ध दर्शन ही दर्शन है, (८) वेद मनुष्य द्वारा रचित है और (९) दयादि सद्वर्माचिरण ही बोद्ध जीवन है ।”

श० प्र० भा० म० ६।१६

१२—भारतीय धर्मदर्शनके पाइचात्य देशीय प्रसिद्ध गिर्य कौन-कौन हैं ?

“दर्शन शास्त्र भारतमें ही जन्म ग्रहण किये हैं, इससे कोई सन्देह नहीं है । दर्शन वस्तुतः बहुत

प्रकारका होने पर भी स्थूल-स्थूल विषयोंके विचार द्वारा छः श्रेणीमें विभक्त हुआ है। भारतमें षड्-दर्शनके नामसे छः श्रेणियाँ प्रसिद्ध हैं। श्रीस देश में भी छः दर्शनों का सम्मान है। आजकल विशेष गवेषणा द्वारा प्रशिया देशके एक अध्यापक गार्वेने निर्णय किया है कि अरिष्टांटल गौतमके न्याय-शास्त्र के शिष्य हैं, खेलिस् कणादके वेशेषिक-शास्त्रके शिष्य हैं, साके टिस् जैमिनीके मीमांसा-शास्त्रके शिष्य हैं, प्लेटो व्यासजीके वेदान्त-शास्त्रके शिष्य हैं, पिथो-गोरास् कपिलके सांख्य-शास्त्रके शिष्य हैं और जिनो पातञ्जलिके योग-शास्त्रके शिष्य हैं।”

—‘दर्शन शास्त्र’ स० तो० ७।

१३—पातञ्जल-दर्शनमें क्या शुद्ध चित्तत्वकी आलोचना है?

“पातञ्जल शास्त्रमें वर्णित कैवल्यावस्था स्थूल और लिङ्गका एक विपरीत भावमात्र है, उसमें किसी चित्तत्वकी आलोचना देखी नहीं जाती।”

—त० वि० १ म अनु० २३

१४—योगशास्त्र किस पदका योग्य है?

“नितान्त जड़से लेकर विशुद्ध चित्तत्वतक की जो सभी अवान्तर अवस्थाएँ हैं, योग-शास्त्र उसमें से एक अवान्तर पद है।”

—त० वि० १ म अनु० २३

१५—‘तत्त्वमसि’ वाक्यका भक्तिपर व्याख्या है?

“मायावादी भाष्यकार कह सकते हैं कि ‘तत्त्व-

मसि’ रूप महावाक्य द्वारा जीव और ब्रह्मका अभेदत्व सिद्ध हुआ है। तत् शब्दसे वे, ‘त्वं’ शब्दसे तुम और ‘असि’ शब्दसे ‘हो’ है। इस अर्थसे तत् ब्रह्म, तुम वही हो—अतएव तुममें और उनमें कोई भेद नहीं है, अभेद है। किन्तु भक्त सम्प्रदायके मतवित् भाष्यकार भेद निरूपणके लिए ‘तत्त्वमसि’—इस वाक्य का दूसरा अर्थ करते हैं। ‘तत्’ शब्दसे अव्यय है; तस्य शब्दका षष्ठी लोप कर व्यवहृत हुआ है। ‘तस्य त्वं असि’—इस वाक्यका अर्थ है ‘तुम उनके हो’। ‘तस्य’—शब्दसे भेद जाना जाता है। ‘तुम’ तत्त्व-वस्तु से पृथक किया गया है। इसलिए ‘तुम वह ब्रह्म नहीं हो’—ऐसा वाक्यार्थ सिद्ध होता है।”

—त० मू० ६

१६—षड्-दर्शनकार व्या सर्वेश्वरेश्वर विष्णु को स्वीकार करते हैं? विष्णुतत्त्व व्या शुद्ध सगुण है?

“जैमिनी आदि मीमांसकोंने वेदके मूल तात्पर्य रूपी भक्तिका त्याग कर ईश्वरको ‘कर्मका अङ्ग’ बना डाला है। कपिलादि निरीश्वर सांख्यकारने वेदके वास्तविक अर्थ का परित्याग कर प्रकृतिको जगत्का कारण बतलाया है। गौतम और कणाद आदि न्याय और वेशेषिक शास्त्रोंमें परमाणुको ही विश्वका कारण बतलाया गया है। उसी प्रकार अष्टावक्र आदि मायावादियोंने निर्विशेष ब्रह्मको ही जगत्का कारण बतलाया है। पातञ्जलि आदि राज-योगियोंने उनके योग-शास्त्रोंके कल्पनामय ईश्वरको ‘स्वरूपतत्त्व’ कहकर स्थापन किया है। ये सभी

मतवाद-परायण आचार्योंने वेदपिद्ध स्वयं भगवान का परित्याग कर उनके खण्ड भावयुक्त ( खण्ड प्रतीतिमय ) एक-एक मतकी स्थापना की है। षड्दर्शनके मतोंकी उत्तमरूप से आलोचना कर तत्त्व मतका खण्डन कर श्रीवेदव्याख्यानजीने भगवत् प्रतिपादक वेदसूत्रोंका अवलम्बन कर वेदान्त-सूत्रकी रचना की है। वेदान्त मतानुसार जहाँ सच्चिदानन्द स्वरूप साकार वस्तु है। निविशेषवादी ब्रह्मको निर्गुण एवं विशेष स्थलमें भगवानको सगुण ( त्रिगुणमय ) कहकर प्रतिपादन करते हैं। वस्तुतः

तत्त्ववत् तु केवल निर्गुण या त्रिगुणातीत नहीं है। परन्तु वे अनन्त चिदगुणराशिके आधार-स्वरूप 'मगुण' विग्रह हैं। विभिन्न मतवादियोंके मतानुसार परम कारण ईश्वर ( विष्णु )को पाया नहीं जाता अर्थात् कोई भी सर्वेश्वरेश्वर सर्वकारण-कारण विद्युत्को नहीं मानते। तथापि परमतका खण्डन करते हुए अपने मतवादकी स्थापना करनेकी चेष्टा की है।"

( क्रमशः )

—अ. प्र. भा. म. २५।४४।५५

## सन्दर्भ-सार

यादवगण और गोपगण श्रीकृष्णके नित्य पार्षद हैं। तथापि यादव लोग शत्रुघ्नोंके अख्याधातसे धायल हुए थे, गोपगण कालीय हृदका विष-जल पान कर मूर्च्छित हुए थे, श्रीवसुदेव और उद्धवादियोंने तत्त्वज्ञान लाभ करनेकी इच्छा प्रकाश की थी, कुरुक्षेत्रमें श्रीवसुदेवजीने नारदादि मुनियोंके निकट संसारसे उद्धार प्राप्त करनेका उपाय पूछा था, वे सभी नरलीलाके उपयोगी लीलाएँ मात्र हैं। श्री-भगवानने जिन प्रकार नरलीलाकी पुष्टिके लिए नाना प्रकारकी मनुष्य चेष्टाएँ दिखलाई हैं, उनके परिकरोंके सम्बन्धमें भी वैसा ही जानना चाहिये। इस प्रकार मनुष्यचेष्टा-प्रकाशका उदाहरण श्रीरुक्मिणीदेवीके चरित्रमें भी देखा जाता है। श्रीरुक्मिणीदेवीने जब अपने भाई रुक्मीके लिए

दुःख प्रकट किया, तब श्रीबलदेवने कहा—तुम सब प्राणियोंके अहितकारी अपने भाईके लिए अज्ञकी तरह मञ्जल चेष्टा कर रही हो, यह तुम्हारी अनुचित बुद्धि है। व्योंगि वह तुम्हारे सुहृदों का ( प्रियपात्र व्यक्तियोंका ) अहितकारी है। भगवद्-द्वारोंही रुक्मीके प्रति रुक्मिणीकी सहानुभूति देखकर बलदेवजीने यह बात कही थी। श्रीकृष्णप्रेयसी रुक्मिणीजीका ऐसे व्यक्तिमें भ्रातृत्व-बुद्धि और उसके लिए हितानुसन्धान चेष्टा केवल नरलीलाकी मुग्धता है, अज्ञानता नहीं है।

शुकदेवजीका कहना है कि शैशवकालसे श्रीकृष्णकी सेवा करते करते कालक्रमसे वृद्धत्वप्राप्त श्रीउद्धवजी विदुर द्वारा पूछे जानेपर प्रत्युत्तर देनेमें समर्थ नहीं हुए। व्योंगि वे श्रीकृष्णके विरह

में अत्यन्त अधीर हो गये थे ( भा. ३।२।३ )। यहाँ उद्घवजीकी वृद्धत्व-प्राप्तिकी बात कालकृत वार्द्धक्य को सूचित नहीं करता है । वे चिरकालसे श्रीकृष्णसेवा कर रहे हैं—इसी बातको सूचित करता है । क्योंकि—

तत्र प्रवयसोऽप्यासन् युवानोऽतिबलोजसः ।  
पिवन्तोऽक्षमैमुँकुन्दस्य मुखाम्भोजसुधां मुदुः ॥  
( भा. १०।४५।१६ )

कंसभयसे भागे हुए यद्, वृष्णि, अन्धक, मधु, कुकुरवंशीय अपने परिकरोंको श्रीकृष्णजीने लाकर द्वारकामें वास कराया था । उनमेंसे वृद्ध व्यक्ति भी श्रीकृष्णकी मुखकमलसुधाको नेत्रोद्वारा पान कर अत्यन्त तेज सम्पन्न युवककी तरह हुए थे । इसलिए यदि श्रीकृष्ण दर्शनसे व्योवृद्ध यादवादि युवक हो सकते हैं, तो शैशवसे श्रीकृष्णसेवापरायण उद्घव का वृद्धत्व कैसे संभव है ?

अन्तरंग भक्तोंका श्रीकृष्णनुल्य-घर्मत्व है, यह पद्मपुराणमें कहा गया है—“मत्तुल्यगुणशालिनः” । अर्थात् ये मेरे समान गुणशाली हैं । “गोपाला मुनयः सर्वे वैकुण्ठानन्दमूर्त्यः ।” ( पद्मपुराण, निवाण-नवण्ड ) । अर्थात् गोप सभी मुनि हैं । क्योंकि वे वैकुण्ठानन्दमूर्ति हैं । भगवान जैसे आनन्दमूर्ति हैं, उनके परिकर लोग भी वैसे ही हैं । भगवानके परम भक्त होनेके कारण वे आनन्दमूर्ति हैं, इसलिए वे ‘मुनि’ कहे गये हैं । मुनियोंके अवतारके कारण गोपगणोंको मुनि नहीं कहा गया है । क्योंकि श्रीबलदेव कहते हैं—

नैते सुरेशा ऋषयो न चंते  
त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ॥  
( भा. १०।१३।३ )६

अर्थात् हे कृष्ण ! ये सभी बछड़े और गोप लोग देवता नहीं हैं, ऋषि नहीं हैं, भेदाश्रय होनेपर भी तुम इनमें प्रकाश पा रहे हो । श्रीबलदेवजीके कथनका यह तात्पर्य है कि ब्रह्माद्वारा श्रीकृष्णके सखा गोपबालकों और बछड़ोंका हरण करने पर श्रीकृष्णने अपने स्वरूपसे गोपादियोंको प्रकाश कर कीड़ा की थी । इसका प्रमाण श्रीबलदेवजीके वचन है—

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नायुंतामुरी ।  
प्रायो मायास्तु ते भत्तुनन्त्या मेऽपि विमोहिनी॥

ब्रह्मोहन-लीलामें ब्रह्माद्वारा श्रीकृष्णके बछड़ों और सखाओंका हरण करने पर श्रीकृष्णने अपने स्वरूपसे ठीक उसी संरूपमें बछड़ों और सखाओं का प्रवाश कर लीला करते थे । उस दिन श्रीबलदेव गोचारणमें नहीं जानेके कारण उन्होंने यह लीलीरहस्य दर्शन नहीं किया था । ब्रजबासियोंका श्रीकृष्णके प्रति नित्यवृद्धिशील प्रेम था, गौओंके नये बछड़े होनेपर उनका पुराने बछड़ोंके प्रति आश्चर्य-जनक स्नेह है—यह देखकर बलदेवजी कहने लगे—यह मायाका कार्य है । कौन माया मुझे ऐसा दिखला रही है ? यह क्या किसी देवता, मनुष्य या असुरकी माया है ? यह माया कहांसे आयी ? यह तो अन्यत्र संभव नहीं है । क्योंकि जब इसके द्वारा मुझे भी मोह हुआ है, यह निश्चय ही मेरे

प्रभु श्रीकृष्णकी माया है। नहीं तो मुझे और कोई  
मोहित नहीं कर सकता। यहाँ 'प्रभु' पदके द्वारा  
अपनी न्यूनता दिखला रहे हैं। श्रीधर्मराज भी  
कहते हैं—

तस्यस्वतंत्रस्य हरेरधीशितुः  
परम्य मायाधियतेर्महात्मनः ॥  
प्रायेन द्रूता इह वै मनोहरा-  
इवरन्ति तद्बुपगुणस्वभावाः ॥

उस परम स्वतन्त्र अधीशवर मायाधीश महात्मा  
सर्वनियामक श्रीहरिके मनोहर द्रूत रूप, प्रभावा-  
दिगुण और भक्तवात्सल्यादि स्वभावमें उनके ही  
समान हैं। वे भक्तरक्षाके निये सर्वत्र भ्रमण करते  
रहते हैं। प्रथम स्वतन्त्रमें कहा गया है—

मधुर्मोऽनदशाहर्हाहं-कुरुन्धरुद्धिरुपिः ।  
आत्मतुल्यबलेन्दुर्मान नार्मोगवतीमिव ॥

(मा. ११११०)

नारोद्वारा रक्षित भोगवतीपुरीकी तरह अपने  
समान बलशाली मधु, भोज, यादव, अर्ह, कुकुर  
और शन्धकों द्वारा रक्षित द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णने  
प्रवेश किया था। अतएव परिकरोंके भगवत्साटश्य  
के कारण निम्नलिखित छलोकमें गोपोंका श्रीकृष्ण  
की समानता सूचित हुई है—

गोपजातिप्रतिच्छन्नो देवः गोपलहपिणः ।  
ईडिरे कृष्णरामो च नटा इव नटं नृपः ॥

(मा. १०११८)

हे राजन् ! नट जिस प्रकार दूसरे नटकी स्तुति  
करता है, गोपजाति - प्रतिच्छन्न देवता लोगोंने भी  
वैसे ही गोपालरूपी रामकृष्णकी स्तुति की थी। वे  
गोपजातिद्वारा प्रतिच्छन्न दूसरे साधारण गोपोंकी  
तरह वेश - व्यवहार युक्त होने पर भी वे प्रायः  
श्रीकृष्णतुल्य हैं—यह साक्षात् सम्बन्धसे समझा  
नहीं जा सकता। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् और श्री-  
बलरामजी मूल सकर्षण होने पर भी गोपालण  
जिस प्रकार गोपालरूपी भगवानके नित्य पार्षद हैं,  
श्रीदामादियोंके सम्बन्धमें भी वैसा ही जानना  
चाहिए। श्रीकृष्ण परिकरोंमें यादवोंको भी लिया  
गया है। श्रीकृष्ण वसुदेवजीसे कह रहे हैं—

अह यूयमसावार्य इमे च द्वारकोक्षः ।

सर्वेऽप्येव यदुश्रेष्ठ विमृग्याः सचराचरम् ॥

(मा. १०१८५।२३)

हे यदुश्रेष्ठ ! मैं, आप लोग, बड़े भाई बलदेव,  
और ये द्वारकावासी सचराचर सभी ही ब्रह्मस्वरूप  
हैं। श्रीवसुदेव आदि पारमार्थिक सत्य होनेके  
कारण अन्वेषणयोग्य द्वारकावासियोंकी भी पार-  
मार्थिक-सत्यता सिद्ध करनेके लिए श्रीकृष्ण अपने  
को उदाहरणरूपमें ले रहे हैं। नराकृति परब्रह्म  
उनकी तरह उनके परिकरोंका भी परमार्थ-स्वरूपत्व  
दिखला रहे हैं। सभी व्यक्ति पुरुषार्थका खोज करते  
हैं। श्रीकृष्ण परमपुरुषार्थ-वस्तु होनेके कारण  
जिस प्रकार अनुयन्धानके पात्र हैं, उनके परिकरों  
के लिए भी वैसा ही है। श्रीकृष्णप्राप्तिकी। जिस  
प्रकारसे आवश्यकता है, उनके परिकर-प्राप्तिकी भी

आवश्यकता है। वेवल श्रीकृष्ण प्रामि द्वारा लीला-रस-आखादनकी सम्भावना नहीं है। अतएव यादव लोग श्रीकृष्णातुल्य होनेके कारण कुरुक्षेत्रमें राजाओंने यादवोंसे कहा—

तददर्शनस्पर्शनानुपथप्रजहर-  
शय्यासनाशनसयोनसपिण्डबन्धः ।

येषां गृहे निरयवत्मनि वत्तंतां वः  
स्वर्गपिवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥

(भा. १० द२।३१)

आप लोगोंके प्रपञ्चातीत गृहमें दर्शन, स्पर्शन, अनुगमन, कथन, शय्या, आसन, भोजन, विवाह-सम्बन्ध और बान्धव-सम्बन्धके साथ स्वर्गपिवर्गवित्तुष्णाकारी भगवान श्रीकृष्ण सर्वदा निवास करते हैं, अतएव तुम ही लोग सार्थकजन्मा हो। भगवान किसी कारणकी अपेक्षा न कर स्वभावतः ही जिस गृहमें वास करते हैं, वह गृह कैसा है? अनिरयवत्म है। 'निरय' का अर्थ है 'संसार'। उसका 'वत्म'—'प्रपञ्च' है। इसलिए वह प्रपञ्चातीत गृह है। श्रीकृष्ण कैसे हैं? "स्वर्गपिवर्गविरमः" है। अर्थात् जिनके द्वारा स्वर्ग और मोक्षका विरति होती है अर्थात् जो निजजनोंको भगवत्विमुखतापर स्वर्ग

या भक्तिसम्पर्कशून्य मोक्ष नहीं प्रदान करते। समान व्यक्तिके साथ ही एक साथ शयनादि संभव है और स्वजातिके साथ ही विवाहादि सम्बन्ध और दैहिक सम्बन्ध स्थापित होता है। यादव लोग भगवत्पार्षदत्वसे कदापि वच्छित नहीं होते, यह बात इस इलोकसे जाना जाता है—

तत्रोपविष्टः परमासने विभु-  
वंभो स्वभासा क्कुभोऽवभ्रासयन् ।

वृतो नृसिंहैयंदूभियंदुत्तमो  
यथोदुराजो दिवि तारकागणैः ॥

(भा. १०।७०।१८)

सुघर्मसभामें विभु श्रीकृष्ण श्रेष्ठासनमें उपवेशन-पूर्वक नरश्रेष्ठ यादव लोगोंद्वारा परिवेष्टित होकर अपनी प्रभाद्वारा सभी दिशाओंको प्रकाश करते हुए तारकावेष्टित चन्द्रमाकी तरह शोभा पाने लगे। यहाँ जिस प्रकार तारकाओंसे चन्द्रमाका कदापि विच्छेद नहीं होता, उसी प्रकार यादवोंका श्रीकृष्ण से कदापि विच्छेद नहीं होता। ताराओंका चन्द्रमा के साथ अवस्थितिकी योग्यताकी तरह यादवोंका श्रीकृष्णपार्षद-योग्यता जानना चाहिए।

— त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रीती महाराज

# श्रीमद्भागवत में माधुर्यभाव

( वर्ष १३ सं० ३-४ पृष्ठ ६६ से आगे )

समय भी कितना परिवर्तनशोल, अस्थायी है, जो विविधता, जटिलता, सुख-दुःख आदि से परिपूर्ण हो हमारे सामने आता है, जिसे हम वर्तमान कहते हैं, धीरे-धीरे वही समय विगत समयका बाना पहिन कर अन्तमें घटि, पल, पक्ष, मास, वर्षों की संज्ञासे व्यवहृत होने लगा है। जाने के समय वह हमारे समक्ष अपनी मीठी स्मृति या दुःख-दर्द की कहानी छोड़कर चला जाता है और भूत की वस्तु बन जाता है। उसे ही हम दूसरी भाषामें अतीत कहते हैं। आगत समय अपनी नूतन साज-सज्जासे समलूक्त हो वर्तमानका रूप धारण कर आता है। परन्तु वह कैसा होगा, यह जानना मानव-बुद्धिसे परेकी बात है। न वह उसका ठीक प्रकार से निर्धारण ही कर सकती है।

यह एक अपरिहार्य विधिका विधान या प्रकृति का चक्र निरन्तर चलता रहता है। उसीके अनुसार कठपुतली की भाँति मानवको चलना पड़ता है। या प्रकृतिकी विविधताएँ, संसार की गति-विधियाँ इच्छा न होने पर भी अपने अनुकूल बना चला नेती है। मनुष्यमात्रके लिए एक समय जो सुखों के अनुल मंभार-द्रव्यके अक्षय भण्डार, उत्ताह, उमंग, मंगलमयता, आमोद-प्रमोद लेकर आता है, तो दूसरा समय दुःखों की विरूपताएँ, निराशा, शोक, हृदय-द्रावक विभीषिकाओंसे परिपूर्ण होकर सामने आता है।

इसी के मध्य अलक्षित रूपसे किसीके संयोग और किसीके वियोग की घटनाओं का समावेश ही जाता है। उसे रस-रसिकोंने अपने साहित्यके अन्तर्गत संयोग-शृङ्खार, वियोग-शृङ्खार आदि की संज्ञा दी है। उसमें अलौकिक माधुर्यका सृजन किया है।

प्रेमी-प्रेमिकाओं के लिए संयोग-शृङ्गार अनुराग में भीग कर सुहावना लुभावना मन-भावना आकर्षक आत्म विस्मृति का होता है। उस समयके प्रत्येक पदार्थ रागरञ्जित दीख पड़ते हैं। वियोग शृङ्गार दुःख-सन्ताप-नैराश्यके कारण अन्तस्थलके अंसुओंसे भीगा रहता है, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, बनविटप, लताएँ, सूर्य, चन्द्र, कीट-पतंग, पशु-पक्षी हतप्रभ श्रीहीन उदासीनतासे समाच्छादित होकर हृष्टिके विषय बनते हैं।

नन्द ब्रजके लिये भी कुछ ऐसा ही समय आ रहा है, जिसकी कल्पना भी किसी के मस्तिष्क में नहीं थी। जिसने मानव मस्तिष्क और मानस में ही नहीं, अपितु वृक्ष, लता, गुलम, पशु-पक्षियों में भी शोक, विषाद, सन्ताप की अभेद्य अन्धकारमयी छाया छा दी थी। मंगल, उत्साह, आनन्दके स्थान पर दुःख, करुणा आदि ने अपना स्थान बना लिया था। वियोग दुःख महान् तप-साधना, चिर-संयम अनुट-धैर्य से परिपूर्ण साधकों के लिये भी अस्त्य

हो जाता है, फिर अन्यकी कथाका वर्णन करना अशक्य सा है।

अकूर राम-कृष्णको धनुष-यज्ञका निमन्त्रण देकर मथुरा ले जाने के लिये मधुपुरीके राजा कंस से प्रेरित होकर नन्द ब्रज आ रहे हैं। उन्होंने ब्रज भूमि की रमणीयता का प्रथम-प्रथम दर्शन किया है। अतः वे अपने आपको भूल से रहे हैं। उनके चरण लड़खड़ा रहे हैं। आनन्दोदयि में अवगाहन करते हुए चेतना सम्पन्न हो अपने भाग्यकी सराहना करते हैं। प्रभु-मिलनके प्रवाह में बहते हुए आगे बढ़ रहे हैं। चलते-चलते उन्हें पावनी ब्रज रजमें अंकित राम-कृष्ण के चरण-चिह्न गोपों गोओंके पद अङ्कुर दीख पड़ते हैं। उनको निरीक्षण कर भावविभोर हो राम-दयाम पदचिह्न चिह्नित धूलि को अपने लजाटपर, शरीरपर लेपन कर कृतार्थ हो रहे हैं।

सौभाग्यतः कुछ दूरी पर ही नन्दन-नन्दन अपने बड़े भाई बलरामके साथ गोपों से हास-परिहास करते हुए गोओंके पीछे-पीछे अपने साधियोंके कंधों पर हस्त धरे मधुर मुरलिका के निनाद से समग्र स्थानोंको ध्वनित करते हुए ब्रजकी ओर प्रस्थान करते दीख पड़ते हैं। वे उसी समय उन्मत्त की भाँति दौड़कर श्रीकृष्ण-रामके निकट पहुँच ताप-भय-हारी चरणोंमें दण्डवत् गिर जाते हैं। भगवान्‌के दर्शनसे नेत्रोंके मार्गसे अश्रुपूर उमड़ पड़ता है। मुखसे वचन नहीं निकलते, कण्ठ गद-गद हो जाता है। तब कृष्ण उनकी विचित्र दशा, मन की स्थिति देख प्रेमभरे मन्द मुसकान के साथ

अपनी अमृतमयी वाणीसे कुशल प्रश्न पूछते हुए उठाकर आलिङ्गन करते हैं। अनन्तर उन्हें साथ ले मार्ग में अपने माता-पिता वसुदेव-देवकीकी कथा पूछते हैं। तथा अन्य वाताएँ पूछते हुए अपने घर आकर अपने बाबा नन्द और स्नेहमयी मातासे भेट करते हैं। अकूर अपने आतिथ्य सत्कार के अनन्तर बाबा नन्दके पास बैठते हैं। सभी प्रकार के कुशल प्रश्नों के साथ अपने आगमन और राजा कंस के द्वारा धनुष-यज्ञके निमन्त्रण की चर्चा करते हैं। नन्द अपने साधियों के साथ रामकृष्ण को लेकर चलने को तैयार हो जाते हैं। और रात्रिमें ही यह घोषणा ब्रजमें करा देते हैं कि कल हम प्रातःकाल ही मथुरा पुरीको प्रस्थान करेंगे। धनुष यज्ञ महोत्सवका निरीक्षण कर अपने नयनों को सफल करेंगे। सभी राजा कंसको गोरस आदि भेट देंगे। अतः सभी अपनी तैयारी कर लें और अपने अपने शकटोंमें सामान रख कर ठीक समयपर प्रस्थान करने को उद्यत रहें।

इस घोषणाने गोपोंके हृदयोंमें अवश्य उत्साह-उत्कण्ठाकी वृद्धि कर दी; परन्तु माता पशोदा और अन्यान्य गोपियों के हृदय में न जाने किस प्रकारकी अनिष्ट-आशङ्काओं ने घर कर लिया। उनके मानस में उथल-पुथल होने लगी। अक्षि-गुगल के समक्ष अँधेरा छा गया। ब्रजराजका मथुरा-प्रस्थान उन्हें भला न लगा। उनकी सारी निशा विविध प्रकारके संकल्प-विकल्पों, विचार धाराओंमें बीत गई। शनैः शनैः प्रातःकाल हुआ। भगवान् भुवनभास्करने भक्त-भक्तसे नभो मण्डलके

साथ समग्र पृथ्वीको घ्रतिरंजित किया । चारों ओर से शकटों की टोलियाँ इकट्ठी हो गईं । नन्द सदन का द्वार शकट समूह से परिवृत हो गया । कृष्ण बलराम भी रथ पर आमोन होने को उत्सुक हो गये । माता यशोदा उन्मना होकर असुअओंसे अपने शरीर को भिगोती हुई द्वारपर आकर खड़ी हो गई । इधर-उधर से गोपियोंके यूथ के यूथ अनेक चचरे करते हुए दुःख पूर में बहते हुए आ खड़े हुए । कृष्ण-बलरामको लेने अक्षूर आये हें । इस संवादने गोपियोंके हृदयोंको व्यथित कर दिया ।

काश्चित्तत्कृत्हृत्पाश्वासम्लानमुखश्रियः ।  
स्त्रं सद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥  
अन्याइच तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तायः ।  
नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥  
स्मरन्त्यश्चापराः शोरेनुरागस्मितेरिताः ।  
हृदिस्पृशशिचत्रपदागिरः संमुमुहः ख्यिः ॥  
गति सुलितां चेष्टां स्तिरघासावलोकनम् ।  
शोकापहानि नर्माणि प्रोद्धामचरितानि च ॥

चित्तयन्त्यो मुकुन्तस्य भीता विरहकातराः ।  
समेताः संधशः प्रोचुरश्चमुख्योऽच्युताशयाः ॥

( भा० १०।३३।१४-१५ )

उम व्यथा से उत्पन्न हृदय-ताप की गर्म इवासों से कुछ ऐसी शिथिल हो गई कि उनको दुपट्टे और और कंगनोंके गिरने तथा बेणीके खुलने का भी चेत नहीं रहा । कुछ गोपियाँ कृष्णके ध्यानमें ऐसी लबलीन हो गईं कि उनकी इच्छियाँ निश्चेष्ट हो गईं और मुक्त व्यक्तियोंको भाँति उनको देहाध्यास भी नहीं रहा । कुछ गोपियाँ कृष्णके अनुराग पूर्ण हास्ययुक्त हृदयहारी मधुर पदवाले वाक्यों को स्मरण कर मोहित हो गईं । गोविन्द की सुलित गति, चेष्टा, स्नेहपूर्ण हँसी और हृषि, शोक दूर करनेवाले नर्म वाक्य और उदार चरित्र आदि को स्मरण करनेसे उनको जब यह चेत हुआ कि उन्होंका वियोग होता है, तब अच्युतमें जिनका चित्त लगा हुआ है, वे गोपियाँ बहुत ही दुखित और भयभीत हुईं । एवं एकत्रित होकर इस प्रकार विलाप करने लगीं ।

( कमशः )

—बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र, शास्त्री

# सम्राट् कुलशेखरकी प्रार्थना

[ गताङ्कसे आगे ]

शुद्ध भक्त लोग भगवानकी सेवा करनेके लिये जैसे व्याकुल होते हैं, वैसे वे उनके दर्शन करनेके लिये व्याकुल नहीं होते। वे जानते हैं कि भगवान की सेवा भगवानके दर्शनसे पृथक् वस्तु नहीं है, बल्कि सेवाकार्य भगवानके दर्शनकी अपेक्षा अत्यन्त आनन्ददायक है। इस प्रकार सेवाकार्यके लिए सबन्तःकरणसे व्याकुल-स्वभाववाले भक्त लोगोंको भगवान ही देखनेके लिए अत्यन्त व्याकुल होते हैं; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार स्नेहमय पिता-माता अत्यन्त प्रिय सन्तानको देखनेके लिए या पालन करनेके लिए सर्वदा ही व्याकुल रहते हैं। इस प्रकारके आदान-प्रदान कार्यमें किसी प्रकारका विरुद्ध दोष नहीं है। ऐसी व्याकुलता दोनों पक्षोंके लिए ही अत्यन्त उपादेय है और जड़ीय हेयांश-रहित है। परमतत्त्वमें वर्तमान उन सभी उपादेय भावोंके आदान-प्रदान ही जड़में विकृत और प्रतिफलित होते हैं और मायिक कामरूपमें परिणात होकर जीवको अनर्थ सागरमें डुबो देते हैं। केवल मनुष्य समाजमें ही नहीं, बल्कि मनुष्येतर जीव-जन्तुके भीतर भी ऐसा विकृत-प्रतिफलन रूप भावका विनिमय वर्तमान है। इसलिए अप्राकृत एकत्वकी अनुभूति होने पर भगवानके सम्बन्ध होनेके कारण एक चींटीकी हृत्या करनेसे भी भगवान असन्तुष्ट होंगे-ऐसा जानकर भगवद्भक्त जीव-हिंसासे सर्वदा

दूर रहते हैं। भक्तप्रिय भगवान भगवद्भक्तके प्रति अत्यन्त अनुरक्त होने पर भी वे अपने अभक्तोंके प्रति किसी प्रकारका अन्याय या अत्याचार सहन नहीं करते। भगवानके सृष्टि-नियमानुसार कोई जीवात्मा कर्मफल वशतः ऊँच-नीच योनिमें जन्म ग्रहण करने पर भी उन सब पतित जीवात्मा पर भक्त लोग कृपा करनेसे भगवान उन सब शुद्धभक्तों के प्रति अत्यन्त प्रीति प्रकाश करते हैं। इसलिए किसी पतित निरीह जीवात्माके कर्मफल - प्राप्त शरीरका अन्य जीवात्मा द्वारा ध्वंस करने पर भगवान उसका अनुमोदन नहीं करते। भक्तप्रिय भगवान उनके भक्तोंकी सर्वदा ही इन सब पाप कार्यों से रक्षा करते हैं। भक्तप्रिय भगवान अपने भक्तके हृदयमें सर्वदा ही ऐसे अप्राकृत ज्ञानका उदय कराते हैं जिसके द्वारा भक्त मब समय ही सब प्रकारके अज्ञानसे दूर रहते हैं। पिता जिस प्रकार स्नेहपात्र पूत्रको सर्वदा ही ज्ञानोपदेश देकर उसे सचेत रखते हैं, उसी प्रकार परमपिता भगवान भक्तप्रिय होकर सर्वदा ही भक्तोंको सचेत रखते हैं। प्रत्येक मनुष्य ही भगवत् भक्त होकर सर्वदा ही भक्तप्रिय भगवान की सहायता प्राप्त कर सकते हैं। भक्तप्रिय भगवान के पास पहुँचनेके लिए आचण्डाल-आह्वाण सभीका अधिकार है। भगवानके पास जानेका अधिकार सब प्रकारके पापयोनि, खी, शूद्र, वैश्य आदि सभी

को है। इसलिए उत्तम कुलोत्पन्न पुण्यवान व्राह्मण तथा राजपियोंकी तो बात ही नहीं है। नम्रभाव-पन्न भगवद् भक्तमें देवताओंके सभी गुण वर्तमान रहते हैं और भगवानके कृपासे ये सभी निष्कापट भक्त लोग सर्वदा ही ज्ञानरूपी ज्ञोति द्वारा प्रकाशमान रहते हैं। भक्तप्रिय भगवान यदि कृपा कर भक्तोंको क्रमशः उन्नतिके पथमें ले जाते हैं, तो उस की अपेक्षा अधिक सहायता कौन कर सकता है? भगवान यदि भक्तोंको दुःख देकर शासन करते हैं, तो भक्त लोग उसे भगवानकी कृपा समझकर ग्रहण कर लेते हैं। जो सभी भगवद्-विद्वेषी असुर लोग भगवानको स्वीकार नहीं करते, भगवान उन्हें त्रिताप यातना देनेवाली मायामें फेंक देते हैं। किन्तु भक्तप्रियता भगवानका स्वाभाविक धर्म है। अतएव वे उन सभी भगवद् विद्वेषी मायामोहित जीवोंका उद्धार करनेके लिए सर्वदा ही साधु-शास्त्र-गुरु आदि को प्रेरणा करते रहते हैं। इसके द्वारा भगवद् विद्वेषी जीव क्रमशः भगवद् उन्मुख होकर पुनः आत्म स्वभावमें प्रतिष्ठित हो सकते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति उन सभी भगवत्-प्रेरित साधु-शास्त्र-गुरुकी सहायता कर अपना उपकार करते हैं। भक्तप्रिय भगवान भगवद्-भक्तोंका उपकार करनेके लिए वैकुण्ठसे अवतरित होते हैं। मूर्ख लोग भगवानकी असीम शक्तिका विनाश कर भगवानका अवतरण स्वीकार नहीं करते या भगवद् अवतारकी बात पर विश्वास नहीं करते। दूसरे प्रकारके मूर्ख-पण्डित हैं, जो भगवानके अवतारवादको स्वीकार करने पर भी वे समझते हैं कि भगवान मायाके द्वारा प्राच्छन्न होकर अवतरित होते हैं और भगवान भी

प्राकृत शरीर स्वीकार कर कर्मफलबाध्य तथा मायाधीन होते हैं। किन्तु भगवद् भक्त लोग ऐसा विचार करापि स्वीकार नहीं करते और वे जानते हैं कि भगवान भक्तों पर कृपा करनेके लिए स्वेच्छा से जिस किसी प्रकारसे अवतरित होते हैं। वे जब भक्तप्रियताके कारण अवतरण करते हैं, तब उन्हें दहिरज्ञा माया भी स्पर्श नहीं कर सकती, ठीक उसी तरह जिस तरह अन्धकार सूर्यके पास जा हो नहीं सकता। भगवान उनके भक्तोंके साथ आकर जिस मनुष्य-लीलाको प्रकट करते हैं, वह देवताओं के लिये भी आगच्छय है।

**भगवानके भक्त स्वभावतः** ही भगवानकी कृपा के ऊपर निर्भरशील हैं। जिस परिमाणमें वे भगवानके ऊपर निर्भर हैं, भगवान भी उसी परिमाणमें उनका भाव ग्रहण करते हैं। भगवान ही भक्तों के हृदयमें अवस्थान कर क्रमशः उन्हें भक्तिःज्यमें अग्रसर होनेवाला सुयोग प्रदान करते हैं। श्रील जीव गोस्वामीने 'भगवान्' शब्दके प्रत्येक अक्षरका विश्लेषण अर्थ किया है। 'भ' अक्षरके अर्थमें भरण-पोषण-कर्ता है और उसी कार्य द्वारा ही भगवानकी भक्तप्रियता दिखलाई देती है। 'ग' अक्षरके अर्थमें 'गमयिता' है अर्थात् जो क्रमशः भक्तोंको भगवद् राज्यकी ओर अग्रसर कराते हैं। 'वा' अक्षरका अर्थ अखिल प्राणियोंमें वास करनेवाले और अखिल प्राणियोंका आधार है। भगवान भक्तोंको ऊचे स्थानोंमें ले जानेके लिए सर्वदा ही यत्नवान होते हैं। भक्तोंके प्रति भगवानकी विशेष दया देखकर भगवद् भक्त करापि प्राकृत धन-ऐश्वर्य के भिखारी नहीं होते और वे जगतके धनवीर,

ज्ञानवीर, सिद्धवीर होनेके लिए लालायित नहीं होते। भगवद् भक्त लोग इन्द्रिय-तर्पणांक लिए भी व्याकुल नहीं हैं। वे पूर्णवस्तु भगवानकी सहायता से पूर्णता प्राप्त कर सर्वदा ही निष्काम और शान्त रूपसे अवस्थान करते हैं। उनकी एकमात्र कामना यही है कि किस प्रकार सर्वदा ही भगवत्पादपद्यों का सेवाधिकार प्राप्त कर धन्यातिधन्य हो सकें। भक्त लोग पुनर्जन्मको दूर करनेके लिए भी व्यस्त नहीं होते।

शिशु या तरुण भक्त लोग कई समय भगवद् भक्तिकी छायामें इन्द्रिय-तर्पणाकी आशा करते हैं और भगवद्भक्ति संचय करनेके साथ-साथ प्राकृत सुखलाभकी आशा करते हैं। किन्तु भक्तप्रिय दयालु भगवान भगवद्भक्तके ये सभी असम्पूर्ण भक्तिभावों को क्रमशः अपनी पादपद्म-सरित-सुधा द्वारा धोकर उनके हृदयको शान्तिमय बना देते हैं। भगवानकी कृपासे भगवद्भक्त लोग जगतके स्वरूपका परिचय प्राप्त करते हैं।

भगवद् भक्तलोग भगवान्‌की कृपासे यह समझ पाते हैं कि प्राकृत जगतमें तथाकथित प्रेम या भला व्यवहार सब कुछ ही मायिक व्यवहारमात्र हैं और सब क्रियाएँ ही इन्द्रिय-तर्पणामय जड़भावपूर्ण हैं। प्राकृत जगतमें तथा कथित पति-स्त्री या प्रेम, पिता-पुत्रका स्नेह, प्रभु-मृत्युका सेव्य-सेवा आदि सभी ही मायाके आवरणयुक्त हैं और अर्थ ही उनका मूल आधार है। इस आवरणको दूरकर देनेसे ही प्राकृत प्रेम या प्रीति व्यवहार की नग्न-मूर्तिको देखकर स्तम्भित होना पड़ता है। भगवान इसलिए भक्तके

मंगलके लिए स्वयं इच्छा कर ही इस प्रकारके मायिक आवरणोंको दूर कर उनका मंगल साधन करते हैं। मायिक आवरणोंसे मुक्त होकर भक्त लोग स्वतः ही एकमात्र भगवान और उनके तदीय व्यक्तियोंके शरणागत हो पड़ते हैं। प्राकृत जगतमें जब मनुष्य मायिक सम्पत्तिसे बच्चित हो जाता है, तब उसके प्राकृत बन्धु उसका और आदर नहीं करते। सारे शास्त्र, इतिहास, पुराण आदि इसका प्रमाण दे रहे हैं। ऐसी निरपेक्ष अवस्थामें भक्तलोग भगवानके ही एकमात्र शरणागत भूत्य हो पड़ते हैं।

प्राकृत भूमिकामें हम लोग जो अनन्त कोटि विश्वोंमें जन्मजन्मान्तरसे भ्रमण कर रहे हैं, वे सभी 'ख' पुष्प ( आकाश-कुसुम ) की तरह तात्कालिक मायिक सृष्टि हैं। उसमें विमोहित जीव मायिक प्रभु होनेकी चेष्टा कर रहे हैं, किन्तु शुद्ध-स्वरूपमें सभी जीव ही स्वरूपसे भगवान मुकुन्दके नित्य दासमात्र हैं। अप्राकृत जगतमें वे जीव भगवानके नित्यदास होकर भी दास एवं प्रभु अद्वयतत्त्व हैं। वहाँ प्रभु दासके दास बनकर प्रभु और दास दोनों ही अप्राकृत रसका अनुभव करते हैं। प्राकृत जगतमें सेवकका आस्वादन नहीं है, तथापि भक्तप्रिय स्वयं भगवान श्रीकृष्ण उस रसका उदाहरण दिखलाने लिए और भक्तोंकी सेवा करनेके लिए उत्सुक होकर महावीर गृजुनके सारथी बने थे। माया विमोहित आसुरिक भावापन्न व्यक्ति भक्त और भगवानकी अद्वयज्ञान भूमिकावी बातको न जान पाकर कोई कोई इस प्राकृत जागतके मालिक होनेकी चेष्टा करते हैं और कोई कोई उस चेष्टामें विफलमनोरथ

होकर भगवानके अस्तित्वके साथ मिल जाने की वासनासे निर्भय ब्रह्मानुसन्धान करते हैं। इस प्रकार के द्वन्द्वमोहसे छुटकारा नहीं प्राप्त करने से भगवान की कृपा प्राप्त करना असम्भव है। इस मायामोहित अवस्थामें जीवको तब तक पड़े रहना पड़ता है, जब तक उसे अपने स्वरूपकी उपलब्धि न हो। ऐसी अप्राकृत उपलब्धि होने पर ही जीव जन्म-मरणसे छुटकारा पाकर मंगलके पथमें अग्रसर होकर 'शिवोऽहम्' वाक्य की उपलब्धि करता है। शिवोऽहम्' शब्दका अर्थ शिव हो जाना नहीं है। उसका अर्थ यही है कि जीव परम-मङ्गलमय भगवानका नित्य सनातन अंश है और मांगलिक तजज्ञातीय वस्तु या भगवानका 'नित्यदास' है।

नित्यदासत्वकी उपलब्धि होने पर ही मुकुन्द को 'हे नाथ' ! 'हे प्रभो' ! कहकर पुकारा जा सकता है। इस प्रकारके अप्राकृत अनुभव होने पर ही हमारे प्रभु भगवान क्या वस्तु हैं, यह जाना जाता है। उसके पहले अर्थात् भगवानको प्रभु या नाथ जाननेके पूर्व भगवत्-सम्बन्धी जो सभी असमूर्ण अनुभव हैं, वे आंशिक और वृथा हैं। भगवानके 'नाथत्व' या प्रभुत्वके अनुभवरहित जगतके व्यक्ति ही मायिक प्रभु या नाथ होनेके लिए बहुत प्रकारसे भौतिक योजनाएँ बनाते रहते हैं। ऐसी भौतिक अनुभूतिमें सभी ही मायाके प्रभु या नाथ होनेके लिए अशेष परिथम कर अनर्थमय जीवन व्यतीत करते हैं। कोई किसीका सेवक होना नहीं चाहता, सभी प्रभु होना चाहते हैं, भले ही हमें पद-पद पर प्रभु होनेकी कन्टकाकीर्ण पथमें बाधा प्राप्त हो।

एक साधारण गृहमेवं अपने छो-पुत्रके प्रभु होनेकी इच्छासे, 'ठंड, गर्मी, हवा और बर्षा' में दिनरात्र परिथम करके भी कदापि प्रभु कहा नहीं जा सकता। वह यह नहीं समझ सकता कि वह गृह-स्वामी होनेकी आशासे गर्दभ की तरह गृहमें भूत्य होकर ही कार्य कर रहा है। यही माया है। प्रभु होनेकी इच्छा और द्वेषमात्रका अवलम्बन कर हम भगवानके नित्यदासत्वको भूल जाते हैं। इसलिए सर्वदा ही हमें भगवान को 'हे नाथ' ! 'हे प्रभु' ! कहकर पुकारना चाहिए। प्रभुत्वकी कामनासे हम क्रमशः मायाका दासत्व करनेके लिए नीचे से नीचे स्तरमें पहुँच जाते हैं। इस जीवनमें जो व्यक्ति भगवानको प्रभुके रूपमें जान सकते हैं, वे ही यथार्थ ब्रह्मण और वैष्णव हैं। नहीं तो सभी व्यक्ति ही कृपण या यसुर हैं। 'जन्माच्यस्य यतः' इस ब्रह्मसूत्रीय भाष्यवाक्य--स्वरूप श्रीपदभागवतके प्रतिपाद्य भगवान मुकुन्द श्रीकृष्ण जिस अंश-कलाके द्वारा मोलह कलाके साथ जगतकी सृष्टि करते हैं, उस अंश--कलाका ही नाम 'अनन्तशयन' है। वे ही सृष्टि के मूल-कारण, ब्रह्माके जन्मदाता, ज्ञानदाता और पुरुषावतार हैं। वे सृष्टिके पहले थे और सृष्टिके घंश होने पर भी वे ही रहेंगे। वे प्रकृतिके ऊपर ईक्षण-शक्ति संचालन कर जगतके उपादान कारण की सृष्टि करते हैं। जड़रूप प्रकृतिकी अपनी कोई शक्ति नहीं है। वह तत्त्व प्रकृतिरा भी प्रभु है, ब्रह्माका भी प्रभु है, जीवका भी प्रभु है और जगत का भी प्रभु है। वे ही परम-सत्य, स्वराट् अभिज्ञ पुरुष हैं और उनके ही नाम, धाम परिकर वैशिष्ट्य का विकृत प्रतिफलनस्वरूप यह मायिक जगत

क्षणस्थायी होकर भी सत्यकी तरह प्रतीत होता है। वास्तव क्षेत्रमें बाहरी प्रकृतिकी नित्य सत्ता नहीं है।

भगवान् अनन्तशयन शेषनागके ऊपर ध्ययन कर इवेतद्वीपमें श्रीमती लक्ष्मीजीद्वारा नित्यकाल सेवित हो रहे हैं। इसलिए पहले ही उन्हें श्रीबल्लभ कट्टकर सम्बोधन किया गया है। वे शेषदेव ही उनकी अचिन्त्य शक्तिद्वारा अनन्त कोटि विश्वको अपने फणांके ऊपर तिलकी तरह धारण किए हुए हैं। उसका अनुभव करके भी हम मायाके प्रभावसे इस शक्तिको प्रकृतिकी 'माध्यमाकर्षण शक्ति' का नाम देकर भगवान्को अनन्त शक्तिका ह्रास करने की चेष्टा कर रहे हैं। उस अनन्तदेव भगवान् संकर्षण की अंशकला और उस संकर्षण-शक्तिको ही प्राकृत वैज्ञानिक माया मिथित कर विकृतरूप से माध्याकर्षण शक्ति या Law of Gravitation' कहनेका प्रयास करते हैं।

प्राकृत वैज्ञानिक अपनी धुद्र बुद्धिद्वारा यह स्थिर करते हैं कि यह माध्यमाकर्षण शक्ति ही

अनन्त कोटि विश्वको धारण की हुई है। किन्तु भगवान्के भक्त लोग इस शक्तिको भगवान्की शक्ति समझकर भगवान्को 'जगन्निवास' कहते हैं। भगवान् जगन्निवास हैं, यह बात स्वयं भगवान्ने ही गीतामें कहा है—'मत्स्थानि सर्वभूतानि'। भगवान्की ऐसी महान् शक्तिका परिचय हमें उपनिषदोंमें "ईशावास्यमिदं सर्वं" आदि वाव्योंद्वारा मिलता है।

भगवान् अनन्तके अनन्त कोटि नाम हैं। उसमें से कुछ नामोंका इस श्लोकमें उल्लेख है। भगवद्-भक्त लोग उस अनन्तकोटि नामोंमें जिस किसी मगलमय नामका निरपराध होकर कीर्तन कर धन्यातिधन्य हो सकते हैं। नाम उच्चारण करनेके लिए कोई कठिन नियम या कानून नहीं है। जिस किसी अवस्थामें भगवन्नाम किया जा सकता है। किन्तु हमारे दुर्भाग्यके कारण भगवान्की ऐसी कृपा होने पर भी हम भगवन्नाम ग्रहण करनेमें आलस्य करते हैं।

( क्रमशः )

—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

— — —

## समितिके छात्रकी सफलता

हमें अत्यन्त हर्ष है कि इस वर्ष भी श्रीगीड़ीय वेदान्त समितिके श्रीदेवानन्द गीड़ीय मठ से श्रीहरिहर ब्रह्मचारी श्रीहरितामामृत व्याकरणकी उपाधि परीक्षामें विशेष कृतित्व के साथ उत्तीर्ण हुए हैं। आशा है इसी तरह अन्यान्य छात्र भी सफलता प्राप्त कर समितिका गोरव बढ़ायेंगे।

— प्रकाशक